

माया के मज़े

हँसी से मौन तक एक अद्वैत यात्रा

लेखक: Aadisatv

अनुक्रम

अध्याय 1 — माया का मज़ाक: जब भगवान भी हमें हंसी में उड़ा देता है

अध्याय 2 — अहंकार: सबसे बड़ा कॉमेडियन

अध्याय 3 — संसार का सर्कस: रिश्ते, रुतबा और रेस

अध्याय 4 — भक्ति का नाटक और साधना का स्वांग

अध्याय 5 — दुख का मज़ाक: जब रोना भी हंसी में बदल जाता है

अध्याय 6 — ज्ञान का चुटकुला: अष्टावक्र और जनक का संवाद

अध्याय 7 — अद्वैत: जब हंसी भी शांत हो जाती है

अध्याय 1 — माया का मज़ाक: जब भगवान भी हमें हंसी में उड़ा देता है

माया कोई डरावनी शक्ति नहीं, एक दिव्य जादूगर है। वह रस्सी को साँप बनाती है और फिर हमें साँप से बचने की आध्यात्मिक तकनीक बेचती है। हम रोते हैं, भागते हैं, उपाय खोजते हैं, और पीछे कहीं भगवान मुस्कुरा रहा होता है: “बेटा, पहले दीया तो जलाओ।” माया का “मा” नहीं भी है, और मापना भी। जो है नहीं, उसे हम नापते रहते हैं - सम्मान कितना, धन कितना, प्रेम कितना, आध्यात्मिक विकास कितना। सवाल यह है कि जो माप रहा है, वह खुद कितना असली है?

दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया।

मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते॥

(स्रोत: भगवद्गीता ७.१४)

अर्थ: मेरी यह त्रिगुणमयी दैवी माया पार करना कठिन है; जो मेरी शरण आते हैं, वे इसे पार कर जाते हैं।

कृष्ण ने “मेरी माया” कहा है, किसी दुश्मन की माया नहीं। यानी खेल भी उसी का, खिलाड़ी भी उसी का, और दर्शक भी वही। हम अपनी समस्या को इतना निजी बना लेते हैं कि भगवान को भी प्रवेश-पास लेना पड़े। तुम जिस “मेरी कहानी” को बचा रहे हो, क्या वह सच में तुम्हारी है? या माया ने किरदार देकर कहा, “अब रोना शुरू करो”? शरण का अर्थ भागना नहीं; यह स्वीकार करना है कि जादूगर से लड़कर जादू नहीं टूटता।

त्रिभिर्गुणमयैर्भावैरेभिः सर्वमिदं जगत्।

मोहितं नाभिजानाति मामेभ्यः परमव्ययम्॥

(स्रोत: भगवद्गीता ७.१३)

अर्थ: तीन गुणों से मोहित संसार उस अविनाशी परम को नहीं पहचानता।

तमस् कहता है, “सो जाओ।” रजस् कहता है, “दौड़ो।” सत्त्व कहता है, “अब थोड़ा refined spiritual बनो।” तीनों मिलकर मनुष्य को नचाते हैं, और मनुष्य कहता है, “यह मेरी personality है।” क्या तुम गुण हो, या गुणों को जानने वाली उपस्थिति? यह प्रश्न जितना सीधा है, अहंकार के लिए उतना ही असुविधाजनक।

रज्ज्वज्ञानात् क्षणेनैव यद्द्रज्जौ हि सर्पधीः।

तद्द्रदात्मन्यनात्मत्वं पश्यत्यज्ञानयोगतः॥

(स्रोत: विवेकचूडामणि, रज्जु-सर्प दृष्टांत)

अर्थ: जैसे रस्सी को न जानने से साँप प्रतीत होता है, वैसे ही अज्ञान से आत्मा में अनात्म प्रतीत होता है।

रस्सी में साँप दिखा, डर असली लगा। अब बताओ - डर असली था या साँप? जीवन में कितने साँप हैं: “लोग क्या कहेंगे”, “मैं असफल हूँ”, “अब सब खत्म”? क्या तुमने कभी दीया जलाकर देखा? ज्ञान साँप को मारता नहीं, बस प्रकाश देता है।

नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः।

(स्रोत: भगवद्गीता २.१६)

अर्थ: असत् का अस्तित्व नहीं; सत् का अभाव नहीं।

माया का मज़ाक यही है कि अस्थायी चीज़ों पर हम स्थायी नामपट्टी लगा देते हैं। देह बदलती है, मूड बदलता है, संबंध बदलते हैं, विचार बदलते हैं - पर दावा रहता है, “मैं ऐसा ही हूँ।” भगवान मुस्कुरा रहा है, हम रो रहे हैं। पहली मुक्ति तब आती है जब अपने रोने को भी थोड़ा दूर से देख सको।

अध्याय 2 — अहंकार: सबसे बड़ा कॉमेडियन

अहंकार खलनायक कम, कॉमेडियन ज्यादा है। वह हर मंच पर आता है और खुद को मुख्य पात्र घोषित कर देता है। भक्ति में भी केंद्र चाहिए, मौन में भी पहचान चाहिए। वह कहता है, “मैं बहुत विनम्र हूँ,” और चाहता है कि लोग उसकी विनम्रता को notice करें। यह “मैं” कब बना? किसने नियुक्त किया? और कब से भीतर कुर्सी लगाकर बैठा है?

जनक उवाच।

कथं ज्ञानमवाप्नोति कथं मुक्तिर्भविष्यति।

वैराग्यं च कथं प्राप्तमेतद् ब्रूहि मम प्रभो॥

(स्रोत: अष्टावक्र गीता १.१)

अर्थ: जनक पूछते हैं - ज्ञान, मुक्ति और वैराग्य कैसे प्राप्त हों?

राजा जनक के पास सब है, फिर भी प्रश्न है - मुक्ति कैसे मिले? यही पहला चुटकुला है। जिसके पास सब है, वही जानता है कि असली चीज़ नहीं मिली। तुम जिस “बस यह मिल जाए” के पीछे दौड़ रहे हो, वह मिलने के बाद कितनी देर टिकता है? इच्छाओं की file में कभी final version आया है?

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज।

क्षमार्जवदयातोषसत्यं पीयूषवद्भज॥

(स्रोत: अष्टावक्र गीता १.२)

अर्थ: मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विष की तरह त्यागो और क्षमा, सरलता, दया, संतोष, सत्य को अमृत की तरह ग्रहण करो।

अहंकार तुरंत पूछता है, “थोड़ा विष चलेगा? spiritual packaging में?” विषय समस्या नहीं, पकड़ समस्या है। तुम फोन पकड़े हो या फोन तुम्हें? तुम सम्मान चाहते हो या सम्मान की इच्छा ने तुम्हें पालतू बना लिया है?

न पृथ्वी न जलं नाग्निर्न वायुर्द्यौर्न वा भवान्।

एषां साक्षिणमात्मानं चिद्रूपं विद्धि मुक्तये॥

(स्रोत: अष्टावक्र गीता १.३)

अर्थ: तुम पंचतत्व नहीं; इनके साक्षी चिद्रूप आत्मा हो।

शरीर पाँच तत्वों का किराए का घर है। अहंकार उसमें मालिक बनकर बैठ गया। “मेरा चेहरा, मेरी उम्र, मेरी image।” बादल को देखते हो तो उसे बादल ही कहते हो; शरीर को देखते हो तो “मैं” क्यों कह देते हो? जो शरीर को देख रहा है, क्या वही बूढ़ा हुआ?

यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि।

अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि॥

(स्रोत: अष्टावक्र गीता १.४)

अर्थ: देह से अलग होकर चित् में विश्राम करो, अभी मुक्त हो जाओगे।

“अभी” अहंकार को पसंद नहीं। उसे लम्बी यात्रा, certificate और विशेष अनुभव चाहिए। पर सत्य अभी है। अगर मुक्ति अभी नहीं पहचानी जा सकती, तो कल कौन पहचानेगा? वही पुराना “मैं”? अहंकार पर हँसो, उससे लड़ो मत। देखा हुआ अहंकार सिंहासन से उतरकर कुर्सी पर बैठ जाता है।

अध्याय 3 — संसार का सर्कस: रिश्ते, रुतबा और रेस

संसार एक सर्कस है। कलाकार भी हम, दर्शक भी हम, और ताली की भूख भी हमारी। रिश्तों में प्रेम कम और भूमिका अधिक हो जाती है: “मैं तुम्हें प्रेम करता हूँ, बशर्ते तुम मेरी कहानी में मनचाहा किरदार निभाओ।” समाज ने इज़्ज़त की अदृश्य सीढ़ी बना दी है। सब चढ़ रहे हैं, पर किसी ने पूछा नहीं कि सीढ़ी किस दीवार पर लगी है।

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।

(स्रोत: भगवद्गीता ६.१९)

अर्थ: वायु रहित स्थान में दीपक जैसे स्थिर रहता है, वैसे योगी का चित्त स्थिर होता है।

हमारा दीपक social media, तुलना, रिश्ते और बाज़ार के पंखे के नीचे रखा है। कोई message देर से आया, लौ काँपी। किसी ने praise नहीं की, लौ काँपी। क्या संवेदनशीलता है या निर्भरता? खिड़कियाँ बाहर नहीं, भीतर बंद करनी पड़ती हैं।

चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।

(स्रोत: योगवासिष्ठ, परंपरागत भाव)

अर्थ: चित्त ही संसार है; इसलिए उसे शुद्ध करना चाहिए।

घटना तीन सेकंड की, commentary तीन दिन की। तुम संसार से दुखी हो या अपनी व्याख्या से? जिस इज़्ज़त के पीछे भाग रहे हो, वह किसकी नज़र में है - तुम्हारी, या उन लोगों की जो खुद किसी और की नज़र में जी रहे हैं?

न वित्तेन तर्पणीयो मनुष्यः।

(स्रोत: कठोपनिषद् १.१.२७)

अर्थ: मनुष्य धन से तृप्त नहीं हो सकता।

नचिकेता मृत्यु के सामने धन-वैभव लौटा देता है। हम discount coupon से हार जाते हैं। धन, रुतबा, प्रतिष्ठा - ये सुविधा दे सकते हैं, तृप्ति नहीं। क्या तुम्हारी दौड़ सच में जीवन के लिए है, या उस खालीपन से बचने के लिए जिसे तुम देखना नहीं चाहते?

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः।

(स्रोत: कठोपनिषद् १.२.२)

अर्थ: श्रेय और प्रेय दोनों मनुष्य के सामने आते हैं; धीर पुरुष उन्हें अलग पहचानता है।

प्रेय तुरंत सुख देता है; श्रेय सच दिखाता है। सर्कस प्रेय पर चलता है - चमक, शोर, ताली। श्रेय शांत है। वह टिकट नहीं बेचता, पर घर वही ले जाता है। मंच पर रहो, पर मंच को आत्मा मत बनाओ।

अध्याय 4 — भक्ति का नाटक और साधना का स्वांग

आधुनिक आध्यात्मिकता सुंदर हो गई है - सुंदर इतनी कि सत्य कभी-कभी कोने में खड़ा रह जाता है। धूप सही, कपड़े ढीले, caption में surrender, और भीतर वही पुरानी बेचैनी: “लोगों ने देखा या नहीं?” भक्ति बुरी नहीं, योग-फोटो बुरी नहीं, retreat बुरा नहीं। पर वह छोटा अभिनेता खतरनाक है जो हर पवित्रता में role ढूँढ़ लेता है। क्या तुम भगवान को खोज रहे हो या भगवान-खोजी दिखना चाहते हो?

न मे बन्धो न मोक्षो मे भीतस्यैता विभीषिकाः।

(स्रोत: अवधूत गीता १.४७)

अर्थ: मेरे लिए न बंधन है न मोक्ष; ये भयभीत मन की कल्पनाएँ हैं।

अवधूत गीता आध्यात्मिक bureaucracy पर हँसती है - मेरा level, मेरी मुक्ति, मेरी प्रगति। सूर्य को क्या फर्क पड़ता है कि जल में उसका प्रतिबिंब काँप रहा है? क्या साधना हो रही है, या spiritual image का insurance?

न त्वं विप्रादिको वर्णो नाश्रमी नाक्षगोचरः।

(स्रोत: अष्टावक्र गीता १.५)

अर्थ: तुम वर्ण, आश्रम या इंद्रियों के विषय नहीं; असंग निराकार साक्षी हो।

मन को designation प्रिय है - गृहस्थ, संन्यासी, तांत्रिक, अद्वैती, advanced meditator। क्या आकाश को visiting card चाहिए? भूमिका निभाओ, भूमिका से बनो मत।

पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।

(स्रोत: भगवद्गीता ९.२६)

अर्थ: जो भक्त प्रेम से पत्ता, फूल, फल या जल देता है, मैं स्वीकार करता हूँ।

भगवान को महँगा सामान नहीं, सच्चा भाव चाहिए। पूजा में सामान महँगा और मन bargain में - यह कैसा सौदा? अगर पत्ता भी प्रेम से स्वीकार है, तो प्रदर्शन किसके लिए है?

यत्रोपरमते चित्तं निरुद्धं योगसेवया।

(स्रोत: भगवद्गीता ६.२०)

अर्थ: जहाँ योग से चित्त शांत होता है और आत्मा आत्मा में संतुष्ट होती है।

ध्यान press release नहीं है। अगर ध्यान के बाद पहला impulse यह बताना है कि “आज बहुत गहरा ध्यान हुआ”, तो मन अभी भी public relations में है। सच्ची भक्ति को दर्शक नहीं चाहिए। जहाँ drama घटता है, वहीं भगवान को जगह मिलती है।

अध्याय 5 — दुख का मज़ाक: जब रोना भी हंसी में बदल जाता है

दुख पर हँसना क्रूरता हो सकता है, पर दुख की जड़ पर करुण मुस्कान ध्यान बन सकती है। अधिकतर दुख घटना से कम और “ऐसा नहीं होना चाहिए था” से अधिक बनता है। जीवन ने कुछ किया, मन ने कानून खोल दिया: “मेरे साथ ऐसा नहीं होना चाहिए।” यह नियम किसने बनाया? जीवन ने तुम्हारी terms कब sign की थीं?

श्रेयश्च प्रेयश्च मनुष्यमेतः।

(स्रोत: कठोपनिषद् १.२.२)

अर्थ: श्रेय और प्रेय दोनों मनुष्य के सामने आते हैं।

दुख अक्सर तब आता है जब प्रेय टूटता है। आराम, सुरक्षा, मान्यता - कुछ हाथ से निकला। पर कभी-कभी श्रेय दुख के वेश में आता है। जो चीज़ छिनी, वह प्रेम था, आदत थी, सुरक्षा थी, या अहंकार की comfortable कुर्सी?

न साम्परायः प्रतिभाति बालं प्रमाद्यन्तं वित्तमोहेन मूढम्।

(स्रोत: कठोपनिषद् १.२.६)

अर्थ: धन-मोह में प्रमत्त मूढ़ को परमार्थ नहीं दिखता।

धन-मोह केवल पैसे का नहीं। image-मोह, शरीर-मोह, संबंध-मोह, spiritual-progress-मोह - सब security की दुकानें हैं। हम टिकाऊ चीज़ गलत बाज़ार में खरीद रहे हैं।

श्वोभावा मर्त्यस्य यदन्तकैतत्।

(स्रोत: कठोपनिषद् १.१.२६)

अर्थ: ये भोग कल नष्ट होने वाले हैं; इन्हें आप ही रखें।

नचिकेता मृत्यु से कहता है - रथ, नृत्य, गीत आप रखिए। आज हम होते तो model पूछते। कौन-सी चीज़ तुम्हें सत्य से मोड़ देती है - सुख, भय, अकेलापन, प्रशंसा?

मात्रास्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः।

(स्रोत: भगवद्गीता २.१४)

अर्थ: सुख-दुख आते-जाते हैं, इसलिए उन्हें सहो।

कृष्ण दुख को झूठ नहीं कहते, बस अनित्य कहते हैं। आँसू आएँ, पर उनके साथ एक जानना भी हो। रमण का प्रश्न कठोर नहीं, दीपक है - “दुख किसे है?” जब दुख पूरा देखा जाता है, वह हमें उस जगह तक ले जाता है जो कभी नहीं टूटती।

अध्याय 6 — ज्ञान का चुटकुला: अष्टावक्र और जनक का संवाद

अब हँसी पतली होती है। जनक राजा है, पर पूछता है - मुक्ति कैसे मिले? यही ज्ञान का चुटकुला है: जिसके पास सब है, वह जानता है कि असली चीज़ नहीं मिली। और जिसके पास कुछ नहीं, वह सोचता है कि सब मिल जाए तो शांति मिल जाएगी। दोनों एक ही चक्कर में हैं।

जनक उवाच। कथं ज्ञानमवाप्नोति कथं मुक्तिर्भविष्यति।

(स्रोत: अष्टावक्र गीता १.१)

अर्थ: जनक पूछते हैं - ज्ञान और मुक्ति कैसे मिले?

यह सजावट से थका हुआ प्रश्न है। क्या तुम्हारे भीतर ऐसा प्रश्न है जो सुख, उपलब्धि, पूजा, संबंध और यात्रा के बाद भी बचा रहता है? क्या तुम उसे सुनते हो या नया लक्ष्य देकर चुप करा देते हो?

मुक्तिमिच्छसि चेत्तात विषयान् विषवत्त्यज।

(स्रोत: अष्टावक्र गीता १.२)

अर्थ: मुक्ति चाहते हो तो विषयों को विष की तरह त्यागो।

विष वस्तु नहीं, पकड़ है। क्या सुख आया या उसे स्थायी करने की भूख आई? क्या सम्मान आया या तुलना उठी? अष्टावक्र सजावट नहीं करते; वे सीधे चित्त की पकड़ पर चोट करते हैं।

न पृथ्वी न जलं नाग्निर्न वायुर्द्यौर्न वा भवान्।

(स्रोत: अष्टावक्र गीता १.३)

अर्थ: तुम तत्व नहीं, उनके साक्षी हो।

शरीर है, विचार है, भावना है। पर तुम वह हो जिसे ये सब दिखाई देते हैं। क्या क्रोध आने से तुम क्रोध हो गए? क्या दुख आने से तुम दुख हो गए? यह प्रश्न अब हँसी नहीं, द्वार है।

यदि देहं पृथक्कृत्य चिति विश्राम्य तिष्ठसि।

अधुनैव सुखी शान्तो बन्धमुक्तो भविष्यसि॥

(स्रोत: अष्टावक्र गीता १.४)

अर्थ: चित्त में विश्राम करो; अभी सुखी, शांत और मुक्त हो जाओगे।

“अभी” मन को पसंद नहीं। मन future liberation चाहता है, क्योंकि भविष्य में अहंकार सुरक्षित रहता है। अगर मुक्ति अभी है, तो तुम किस चीज़ का इंतज़ार कर रहे हो?

अहो निरञ्जनः शान्तो बोधोऽहं प्रकृतेः परः।

(स्रोत: अष्टावक्र गीता २.१)

अर्थ: अहो! मैं निरंजन, शांत, बोधस्वरूप और प्रकृति से परे हूँ।

जनक का “अहो!” अंतिम हँसी है - इतने दिन मैं कहाँ उलझा था? प्रकृति चलती रही, बोध देखता रहा। राज्य रहे, पर राजा भीतर दास न रहे - यही मुक्ति है।

अध्याय 7 — अद्वैत: जब हंसी भी शांत हो जाती है

अब हंसी मौन में घुलती है। माया पर हंसी किसी उपहास की हंसी नहीं थी, पहचान की हंसी थी। जैसे स्वप्न से जागकर मुस्कराते हैं - “मैं कितना डर रहा था!” माया का अंतिम मज़ा यह है कि वह इतनी सजीव थी कि हम रोए, हँसे, लड़े, साधना की, मुक्ति खोजी - और अंत में देखा कि देखने वाला कभी बँधा ही नहीं था।

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या जीवो ब्रह्मैव नापरः।

(स्रोत: शंकराचार्य-परंपरा, विवेकचूडामणि सार)

अर्थ: ब्रह्म सत्य है, जगत मिथ्या है, जीव ब्रह्म ही है।

मिथ्या का अर्थ अनुभव का नाश नहीं, स्वतंत्र अंतिम सत्य का अभाव है। रस्सी में साँप दिखा - अनुभव हुआ, पर साँप स्वतंत्र सत्य नहीं था। “मैं ब्रह्म हूँ” अहंकार का नारा नहीं; अहंकार का विलय है।

यथा रज्जु सर्पबुद्धिर्भ्रमाद्भवति नान्यथा।

(स्रोत: विवेकचूडामणि, रज्जु-सर्प परंपरा)

अर्थ: भ्रम से रस्सी में साँप की बुद्धि होती है।

अब रस्सी-साँप फिर लौटता है, पर चुटकुला शांत हो गया। डर भी चेतना में था, साँप भी, रस्सी भी। भ्रम भी द्वार बन सकता है। क्या संसार भी ऐसा ही नहीं - भूल के माध्यम से स्मरण की ओर धकेलता हुआ?

अयमात्मा ब्रह्म।

(स्रोत: माण्डूक्य उपनिषद् २)

अर्थ: यह आत्मा ही ब्रह्म है।

कोई दूर ईश्वर नहीं, कोई भविष्य की अवस्था नहीं। जो अभी जान रहा है, वही प्रकाश है। मन पूछता है - कैसे? कब? किस विधि से? वाक्य मौन रहता है। रमण की मुस्कान की तरह, वह प्रश्न को source पर लौटा देता है।

नाहं देहो न मे देहो जीवो नाहमहं हि चित्।

(स्रोत: अष्टावक्र गीता २.२२)

अर्थ: मैं देह नहीं, देह मेरी नहीं; मैं चित् हूँ।

देह रहती है, संबंध रहते हैं, आनंद-दुख आते हैं। पर मालिकाना नरम हो जाता है। भीतर कोई जगह अछूती रहती है।

न मे बन्धो न मोक्षो मे भीतस्यैता विभीषिकाः।

(स्रोत: अवधूत गीता, अद्वैत-भाव)

अर्थ: मेरे लिए न बंधन है न मोक्ष; ये भयभीत मन की कल्पनाएँ हैं।

साधना उस मन के लिए थी जो बँधा मानता था। काँटे से काँटा निकला, दोनों रखकर क्या करोगे? “माया के मज़े” का अंतिम मज़ा यही है कि चुटकुला समझ में आते ही हँसने वाला भी नहीं मिलता। जादूगर, दर्शक, मंच और भ्रम - सब उसी एक चेतना की लहरें निकले। मौन ही अंतिम हँसी है।